पंजाब राज्य

बनाम

सौरभ बख्शी

(2015 की आपराधिक अपील संख्या 520)

30 मार्च, 2015

[न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत]

दंड संहिता, 1860: धारा 304A––तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाना––सजा का अधिरोपण––सजा की मात्रा की पर्याप्तता—तेज रफ्तार और लापरवाही से गाड़ी चलाने से दो की मौत—विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी को दोषी ठहराया और उसे 1 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई—-उच्च न्यायालय ने यह देखा कि मृतक के विधिक प्रतिनिधियों को क्रमशः 7.30 लाख रुपये और 12.07 लाख रुपये का मुआवजा दिया गया था और प्रतिवादी एक वर्ष में से 24 दिन की सज़ा भुगत चुका है और, इसलिए, दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए सजा को पहले ही पूरी की जा चुकी अवधि तक घटा दिय— – अभिनिर्धारित: उच्च न्यायालय इस सिद्धांत को लागू करने में दया के जुनून से बह गया कि मुआवजे का भुगतान सजा को घटाकर 24 दिनों तक करने का एक कारक है—यह बिल्कुल गलत सहानुभूति के दायरे में है और एक तरह से न्याय का मखौल है—निचली अदालतों द्वारा लगाई गई 1 साल की सज़ा को घटाकर 6 महीने

कर दिया गया है—कानून निर्माता धारा 304 ए में सजा देने की नीति की जांच करेंगे, उस पर दोबारा गौर करेंगे और उस पर फिर से विचार करेंगे—सज़ा /सज़ा सुनाना।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

1. तत्काल मामले में, तेज रफ्तार और लापरवाही से गाड़ी चलाने का तथ्य स्थापित किया गया था। यह न्यायालय लगातार सड़क दुर्घटनाओं की संख्या में वृद्धि पर नज़र रख रही है और यह भी देखा है कि कैसे वाहन चालक पूरी तरह से उतावले और लापरवाह हो रहे हैं। इस अदालत ने सड़कों की संख्या में लगातार वृद्धि देखी जा रही है। न तो कानून को और न ही कानून को लागू करने वाली अदालत को कभी इस तथ्य से अनजान रहना चाहिए कि ऐसी दुर्घटनाओं में बहुमूल्य जानें चली जाती हैं या जो पीड़ित बच जाते हैं वे जीवन भर के लिए अपंग हो जाते हैं जो, एक तरह से, मौत से भी बदतर है। एक व्यवस्थित समाज में इस तरह की धारणाओं का विकसित होना एक खतरनाक घटना है। सजा का सिद्धांत सुधारात्मक उपायों को मान्यता देता है लेकिन ऐसे अवसर भी आते हैं जब मामले के तथ्यों के आधार पर निवारण एक अनिवार्य आवश्यकता है। उच्च न्यायालय इस सिद्धांत को लागू करने में दया के जुनून से बहक गया कि मुआवजे का भुगतान सजा को 24 दिनों तक कम करने का एक कारक है। यह बिल्कुल गलत सहानुभूति के दायरे में है। यह एक तरह से न्याय का मजाक है। विचारण दंडाधिकारी द्वारा लगाई गई एक साल की सज़ा जिसकी

अपीलीय अदालत ने पुष्टि की थी, उसे घटाकर छह महीने कर दिया गया है। [पैरा 17] [610-ए-बी, सी-डी, एफ-एच; 611-ए]

2. भारत में सड़क दुर्घटनाओं का लज्जाजनक रिकॉर्ड है। वाहन चालकों में लापरवाही भरा रवैया रहता है। उन्हें लगता है कि वे "उस सब के सम्राट हैं जिसका वे सर्वेक्षण करते हैं"। नशे की लत लापरवाही से वाहन चलाने को बढ़ावा देती है जहां दूसरे लोग उनका शिकार बन जाते हैं. गरीबों को लगता है कि उनका जीवन सुरक्षित नहीं है, पैदल यात्री अनिश्चितता के बारे में सोचते हैं और सभ्य व्यक्ति निरंतर भय में गाड़ी चलाते हैं लेकिन फिर भी उन लोगों के अप्रिय रवैये से आशंकित रहते हैं जो खुद को "जीवन से बड़ा" के रूप में पेश करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में, कानून निर्माताओं को आईपीसी की धारा 304ए में सजा नीति की जांच, पुनःविचार और समीक्षा करनी चाहिए। [पैरा 18] [611-8-डी]

गोपाल सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य (2013) 7 एससीसी 545; मप्र राज्य बनाम मेहताब 2015 (2) एससीएएलई 386––पृथक किए गए।

पंजाब राज्य बनाम बलविंदर सिंह और अन्य (2012) 2 एससीसी 182: 2012 (1) एससीआर 45; गुरु बसवराज उर्फ बेन्ने सेटप्पा बनाम कर्नाटक राज्य (2012) 8 एससीसी 734: 2012 (8) एससीआर 189; सुरेश बनाम हरियाणा राज्य सीआरएल अपील संख्या 420/2012 निर्णय दिनांक 28.11.2014; दलबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2000) 5 एसईसी 82: 2000 (3) एससीआर 1000; बी. नागभूषणम बनाम कर्नाटक राज्य

(2008) 5 एससीसी 730: 2008 (8) एससीआर 444; रतन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1979) 4 एसईसी 719: 1980 (1) एससीआर 846; कर्नाटक राज्य बनाम कृष्णा (1987) 1 एससीसी 538:1987 (1) एससीआर 1103; सेवक पेरुमल बनाम टी.एन. राज्य (1991) 3 एसईसी 471: 1991 (2) एससीआर 111; जशुभा भरतसिंह गोहिल बनाम गुजरात राज्य (1994) 4 एससीसी 353; कर्नाटक राज्य बनाम शरणप्पा बसनगौड़ा व अन्य (2002) 3 एससीसी 738: 2002 (2) एससीआर 692; मप्र राज्य बनाम सलीम (2005) 5 एससीसी 554: 2005 (1) पूरक एससीआर 562; सिरिया बनाम म.प्र. राज्य (2008) 8 एससीसी 72: 2008 (8) एससीआर 422; एलिस्टर एंथोनी परेरा बनाम महाराष्ट्र राज्य (2012) 2 एससीसी 648: 2012 (1) एससीआर 145; शैलेश जसवन्तभाई बनाम गुजरात राज्य (2006) 2 एसईसी 359: 2006 (1) एससीआर 477; श्याम नारायण बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2013) 7 एससीसी 77: 2013 (8) एससीआर 951––संदर्भित किए गए।

निर्णय विधि संदर्भ

2012 (1) एससीआर 45	संदर्भित किया गया	पैरा 6
2012 (8) एससीआर 189	संदर्भित किया गया	पैरा 6
2013 (7) एससीसी 545	पृथक किया गया	पैरा 7
2015 (2) एससीएएलई 386	पृथक किया गया	पैरा 7
2000 (3) एससीआर 1000	संदर्भित किया गया	पैरा 10

2008 (8) एससीआर 444	संदर्भित किया गया	पैरा 11
1980 (1) एससीआर 846	संदर्भित किया गया	पैरा 11
1987 (1) एससीआर 1103	संदर्भित किया गया	पैरा 12
1991 (2) एससीआर 711	संदर्भित किया गया	पैरा 12
1994 (4) एससीसी 353	संदर्भित किया गया	पैरा 12
2002 (2) एससीआर 692	संदर्भित किया गया	पैरा 12
2005 (1) पूरक एससीआर 562	संदर्भित किया गया	पैरा 12
2008 (8) एससीआर 422	संदर्भित किया गया	पैरा 13
2012 (1) एससीआर 145	संदर्भित किया गया	पैरा 14
2006 (1) एससीआर 477	संदर्भित किया गया	पैरा 15
2013 (8) एससीआर 951	संदर्भित किया गया	पैरा 16

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार; आपराधिक अपील संख्या 520/2015

चंडीगढ़ में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के 2013 की सीआरएलआर संख्या 417 में दिनांक 04 10.2013 के निर्णय और आदेश से

वी. मधुकर, एएजी, अन्विता कौशीश, मोहित नैन, कुलदीप सिंह अपीलार्थी की ओर से।

मीनाक्षी अरोड़ा, वंदना गोगना, महिमा सरीन और वासव अनंतराम उत्तरदाताओं की ओर से।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

1. बहुत पहले, एक प्रख्यात विचारक और लेखक, सोफोकल्स को कहना पड़ा था: "कानून कभी भी लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि डर उसका समर्थन न करे।"

यद्यपि उपरोक्त कथन सदियों पहले दिया गया था, परंतु आज के समाज में इसकी प्रासंगिकता, एक तरह से, अत्यधिक जोश के साथ है। प्रत्येक सही सोच वाले नागरिक का कर्तव्य है कि वह कानून के प्रति सम्मान दिखाए ताकि एक सुव्यवस्थित, सभ्य और शांतिपूर्ण समाज का उदय हो सके। यह ध्यान में रखना होगा कि कानून किसी भी तरह की अराजकता के खिलाफ है। यह अराजकता के प्रति पूर्णतः असहिष्णु है। यदि कोई कानून की अवहेलना करता है, तो उसे कानून के क्रोध का सामना करना पड़ता है, यह आनुपातिकता की अवधारणा पर निर्भर करता है जिसे कानून मान्यता देता है। यह कभी नहीं भुलाया जा सकता है कि संवैधानिक रूप से स्थापित मापदंडों के भीतर न्यायिक जांच के अधीन, सक्षम विधायिकाओं द्वारा बनाए गए आपराधिक कानून का उद्देश्य सामूहिक हित की रक्षा करना और प्रत्येक व्यक्ति को, जो समूह का एक घटक है, अनुचित खतरों से बचाना है। कभी-कभी अहंकेंद्रित और असभ्य तरीके से

यह कहा जाता है कि कानून व्यक्तिगत कार्यों को बाध्य नहीं कर सकता है, जिन्हें लोगों के बड़े समूह द्वारा दोष माना जाता है, लेकिन, सच्चाई यह है और यही है कि जब लोकतंत्र में कानून संवैधानिक जांच की कसौटी पर खरा उतरता है, तो व्यक्तिगत धारणाओं को नजरअंदाज किया जाना चाहिए। कभी-कभी कुछ अपराध समाज पर अपराध की प्रकृति और प्रभाव के आधार पर अधिक तीव्रता और गंभीरता धारण कर लेते हैं। किसी भी अदालत को दया के जुनून में बहकर इसकी अनदेखी नहीं करनी चाहिए। यह अदालत का दायित्व है कि वह खुद को लगातार याद दिलाए कि पीड़ित का अधिकार, और ऐसा कहा जाए, कुछ अवसरों पर पीड़ित व्यक्ति और साथ ही बड़े पैमाने पर समाज पीड़ित हो सकता है, कभी भी हाशिये पर नहीं रखा जा सकता है। इस संदर्भ में न्यायमूर्ति बेंजामिन एन. कार्डिज़ो के कथन को दोहराया जा सकता है, "न्याय, यद्यपि अभियुक्त को बकाया होता है, अभियोक्ता को भी देय होता हैं। और, इसलिए, अपेक्षित मानदंड उदाहरणों में निर्धारित स्थापित सिद्धांत होने चाहिए। इसे न तो भावुकता की भावना से निर्देशित होना है और न ही पूर्वाग्रहों से संचालित होना है। हम इस प्रस्तावना से शुरुआत करने के लिए बाध्य हैं क्योंकि हमें प्रतिवादी के उक्त अपराध की दोषसिद्धि को बरकरार रखने के बाद भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 304 ए के तहत उच्च न्यायालय द्वारा दी गई सजा की मात्रा की पर्याप्तता की अवधारणा से निपटना आवश्यक है क्योंकि अभियोजन पक्ष ने यह आरोप साबित कर दिया है कि प्रतिवादी तेजी से

और लापरवाही से मोटर वाहन चलाने के कारण दो व्यक्तियों की मौत का कारण बना।

2. जो तथ्य बताना आवश्यक है वह यह है कि 14.6.2007 को जगदीश राम और उनका भानजा शविंदर कुमार उर्फ टिंकू, बहन का बेटा, अपनी मारुति कार पंजीकरण पीबी-11-एम-8050 में संगरूर से पटियाला के लिए चले थे। उक्त वाहन के पीछे एक अन्य मारुति कार, जिसका रजिस्ट्रेशन नंबर PB-09-C-6292 है, में रमेश चंद भी था। मालूम हो कि ये सभी शविंदर कुमार उर्फ टिंकू के वैवाहिक रिश्ते के सिलसिले में संगरूर में देस राज नामक व्यक्ति के घर गए थे। टिंकू जिस गाड़ी को चला रहा था वह रमेश की गाड़ी से 25/30 कदम की दूरी पर आगे थी। दोपहर करीब दो बजे जब वे बस स्टैंड महमदपुर गांव से कुछ दूर आगे पहुंचे तो विपरीत दिशा से एक इंडिका कार जिसका नंबर एचआर-02-6800 था, बहुत तेज गति से आई और उक्त कार के चालक ने सीधे जगदीश की कार में टक्कर मार दी और उसे काफी दूर तक घसीटता ले गया, जिससे वह खाई में जा गिरी। रमेश चंद, जो अपनी कार में पीछे चल रहे थे, ने देखा कि उनके बहनोई और भानजे को कई चोटें लगी थीं और उनकी हालत गंभीर थी। एक पुलिस एम्बुलेंस मौके पर आई और घायल व्यक्तियों को राजिंदरा अस्पताल, पटियाला ले जाया गया जहां जगदीश और शविंदर कुमार ने दम तोड़ दिया। उक्त घटना के मद्देनजर जगदीश के बहनोई रमेश चंद द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गई थी और तदनुसार लापरवाही से गाड़ी चलाने के लिए

प्रतिवादी के खिलाफ धारा 279/304 ए के तहत अपराध दर्ज किया गया था। विद्वान विचारण दंडाधिकारी, पटियाला ने आईपीसी की धारा 279/304 ए के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आरोप तय किए, जिस पर प्रतिवादी ने खुद को दोषी नहीं होना बताया और मुकदमा चलाए जाने का दावा किया। अभियोजन पक्ष ने अपना मामला साबित करने के लिए छह गवाहों का परीक्षण किया। विद्वान अतिरिक्त मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, पटियाला ने दिनांक 23.4.2012 के फैसले और आदेश के तहत प्रतिवादी को आईपीसी की धारा 304 ए के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया और उसे एक वर्ष की अवधि के लिए कठोर कारावास और 2000/- रुपये का जुर्माना भरने की सजा एक व्यतिक्रम खंड के साथ सुनाई । अपील किए जाने पर, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, पटियाला ने दिनांक 6.9.2013 के फैसले और आदेश द्वारा अपील को खारिज कर दिया।

3. जैसा कि तथ्यात्मक मैट्रिक्स खुलासा करेंगे, प्रतिवादी ने उपरोक्त दोषसिद्धि और सजा से दुखी होकर 2013 की आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2955 को प्राथमिकता दी और उच्च न्यायालय ने सजा की मात्रा को संबोधित आपराधिक पुनरीक्षण का निपटारा करते हुए उस संदर्भ में कहा कि:–

"...जगदीश राम के कानूनी उत्तराधिकारियों को एमएसीटी द्वारा मुआवजे के रूप में 7,30,000/- रुपये और एमएसीटी द्वारा स्विंदर कुमार उर्फ टिंकू के कानूनी उत्तराधिकारियों को 12,07,206/- रुपये की राशि प्रदान

की गई है। एफएओ संख्या 5329 और 5330 इस न्यायालय में लंबित हैं। दिनांक 19.9.2013 के आदेश के अनुपालन में, याचिकाकर्ता ने मृतक जगदीश राम और स्विंदर कुमार उर्फ टिंकू के एलआर को भुगतान किए जाने वाले मुआवजे के रूप में विचारण न्यायालय के समक्ष 85,000/- रुपये जमा किए हैं। मुआवज़ा स्विंदर कुमार उर्फ टिंकू के एलआर को 50,000/- रुपये और जगदीश राम के एलआर को 35,000/- रुपये के रूप में विभाजित किया जाएगा। रसीद को रिकार्ड पर ले लिया गया है। हिरासत प्रमाण पत्र के अनुसार याचिकाकर्ता सौरभ बख्शी 30.9.2013 को एक वर्ष में से 24 दिनों की सजा काट चुके हैं।"

इस दृष्टिकोण के चलते उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि को बरकरार रखा और सजा को कम कर दिया, जैसा कि पहले कहा गया है, पहले से ही भुगती गई अवधि तक।

4. इस समय, यह बताना आवश्यक है कि प्रतिवादी, जो शुरू में व्यक्तिगत रूप से मामले पर बहस करना चाहता था, एक वकील द्वारा सहायता प्राप्त करने के लिए सहमत हुआ था और तदनुसार इस अदालत ने मामले में अदालत की सहायता के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा को नियुक्त किया था।

5. हमने श्री वी. मधुकर, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता और सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा, प्रतिवादी के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील को सुना है।

6. श्री मधुकर द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि जब अभियोजन पक्ष प्रतिवादी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को स्थापित करने में सक्षम रहा था और विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय दोनों ने सजा को बरकरार रखा था, तो उच्च न्यायालय की ओर से केवल इस आधार पर सजा को पहले से ही पूरी की गई अवधि तक कम करने का कोई औचित्य नहीं था कि प्रतिवादी ने कुछ मुआवजे का भुगतान किया था। उनका आगे यह कहना है कि अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए कि दो मौतें हुई थीं, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति के प्रति सचेत रहना चाहिए था और सजा की मात्रा में हस्तक्षेप नहीं करने का ध्यान रखना चाहिए था। उन्होंने पंजाब राज्य बनाम बलविंदर सिंह और अन्य[1] और गुरु बसवराज उर्फ बेन्ने सेटप्पा बनाम कर्नाटक राज्य[2] के फैसलों के ओर हमे प्रशस्त किया है।

7. इसके विपरीत विद्वान वरिष्ठ वकील सुश्री मीनाक्षी ने तर्क दिया है कि जिस समय दुर्घटना हुई उस समय प्रतिवादी काफी छोटा था और यह लापरवाही का कार्य हो सकता है, लेकिन मारुति कार चालक के योगदान से इनकार नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, सजा को कम करने के लिए कम करने वाली परिस्थितियां हैं और तथ्यात्मक मैट्रिक्स प्राप्त करने में उच्च न्यायालय ने सुधारात्मक रचना को अपनाया है जो आनुपातिकता की अवधारणा को भी दर्शाता है। विद्वान वरिष्ठ वकील यह भी प्रस्तुत किया

---

1. (2012) 2 एससीसी 182

2. (2012) 8 एससीसी 734

कि जब उच्च न्यायालय ने धारा 304ए के तहत स्वीकार्य विवेक का प्रयोग किया है तो इस अदालत को हस्तक्षेप करने में मंद होना चाहिए। उनका आग्रह है कि जब मुआवजा दिया जा चुका है, उच्च न्यायालय ने पीड़िता के पुनर्वास के पहलू को ध्यान में रखा है और जब वह उद्देश्य पूरा हो गया है तो सजा में कमी में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। विद्वान वरिष्ठ वकील ने गोपाल सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य[3] और 2015 की आपराधिक अपील संख्या 290 में मध्य प्रदेश राज्य बनाम मेहताब[4] नामक हालिया फैसले से प्रेरणा ली है।

8. शुरुआत में, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रतिवादी को विचारण न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय अदालत द्वारा भी दोषी ठहराया गया था। उक्त दोनों न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष न तो विकृत हैं और न ही उन्होंने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप की मांग करते है। जैसा कि हमने देखा है, उच्च न्यायालय प्रतिवादी द्वारा मृतक जगदीश राम और उनके भतीजे के एलआरस को 85,000/- रुपये की राशि मुआवजे के भुगतान के तथ्य से प्रभावित हो गया है, और उक्त मुआवजा उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.9.2013 के आधार पर भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। सुश्री अरोड़ा द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि घटना के समय प्रतिवादी की कम उम्र के अलावा उपरोक्त पहलू शमन कारक का गठन करेगा। महताब के मामले में दो न्यायाधीशों की

---

3. (2013) 7 एससीसी 545

4. 2015 (2) एससीएएलई 386

पीठ आईपीसी की धारा 304 ए के तहत मामले की सुनवाई कर रही थी, जिसमें प्रतिवादी को धारा 304 ए आईपीसी और 337 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया गया था और क्रमशः एक साल और तीन महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। उच्च न्यायालय ने सजा घटाकर 10 दिन कर दी थी। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि उस मामले में मृतक को बिजली के करंट के झटके के कारण चोटें आई थीं। अदालत ने राज्य के विद्वान वकील की दलील पर

ध्यान दिया और निम्नानुसार राय दी: -

"7. राज्य के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि आरोपी प्रतिवादी ने अपने खेत में एक ट्रांसफार्मर स्थापित किया था और बिजली के तारों को खुला छोड़ दिया था जो एक लापरवाहीपूर्ण कार्य था। मृतिका सुशीला बाई की मृत्यु उक्त नंगे तार, जिसमें हाई वोल्टेज था तथा अंधेरे में दिखाई नहीं दे रहा था, के कारण मृत्यु हो गयी। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों से अपराध पूरी तरह साबित होने के बाद भी उच्च न्यायालय द्वारा सजा को 10 दिन तक कम करना उचित नहीं था, जो उचित नहीं था। भले ही कारावास की सजा पर उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना था, उच्च न्यायालय को जुर्माने की सजा बढ़ानी चाहिए थी और सजा कम करने की शर्त के रूप में उचित मुआवजा देना चाहिए था।

8. हम दलील में बल पाते हैं। यह अदालत का कर्तव्य है कि वह किसी दोषी को उचित सजा दे जिसके खिलाफ आरोप साबित हो गया हो।

हालाँकि प्रत्येक कम करने वाली या गंभीर करने वाली परिस्थिति को उचित महत्व दिया जा सकता है, लेकिन पहले से ही गुजर चुकी अवधि में सजा की यांत्रिक कमी की सराहना नहीं की जा सकती है। सजा न केवल आरोपी के लिए बल्कि पीड़ित और समाज के लिए भी निष्पक्ष होनी चाहिए। पीड़िता के पुनर्वास के पहलू पर विधिवत विचार करना भी अदालत का कर्तव्य है। दुर्भाग्य से, ये कारक विवादित आदेश में गायब हैं। जब एक निर्दोष की जान चली गई तो केवल 10 दिन की सज़ा देने का कोई ठोस कारण नहीं बताया गया ह" ।

ऐसा कहने के बाद अदालत ने सुरेश बनाम हरियाणा राज्य[5] के फैसले का हवाला दिया और आरोपी प्रतिवादी की वित्तीय क्षमता को ध्यान में रखते हुए मुआवजे को बढ़ाया, और निम्नानुसार निर्देश दिया:-

"10. जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, प्रतिवादी को उसकी लापरवाही से मौत का दोषी पाया गया है, उच्च न्यायालय द्वारा मृतक के उत्तराधिकारियों को कोई मुआवजा दिए बिना कारावास की सजा को 10 दिनों तक कम करना उचित नहीं था। हमारा मानना है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय के आदेश को केवल इस संशोधन के साथ बरकरार रखा जा सकता है कि आरोपी छह महीने के भीतर मृतक के उत्तराधिकारियों को 2 लाख रुपये का मुआवजा देगा। ऐसा ना करने के रूप में, उसे छह महीने के लिए कठोर कारावास

---

5. 28.11.2014 को निर्णित, 2012 की आपराधिक अपील संख्या 420

भुगतना होगा। अभियुक्तों के सीमित वित्तीय संसाधनों को ध्यान में रखते हुए 2 लाख रुपये का मुआवजा तय किया जा रहा है, लेकिन उक्त मुआवजा मृतक के उत्तराधिकारियों के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में, अभियुक्त द्वारा भुगतान किए जाने वाले मुआवजे के अलावा, राज्य को धारा 357-ए के तहत मुआवजा देने के लिए बाध्य किया जा सकता है। सुरेश (ऊपर) में इस न्यायालय के फैसले के अनुसार, केरल राज्य द्वारा अपनाई गई योजना सभी राज्यों पर लागू है और उक्त योजना मृत्यु के मामले में 5 लाख रुपये तक के मुआवजे का प्रावधान करती है। वर्तमान मामले में, न्याय के हित में, मध्य प्रदेश राज्य द्वारा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, गुना के पास उपलब्ध/उपलब्ध कराई जाने वाली धनराशि में से धारा 357-ए के तहत 3 लाख रुपये का अंतरिम मुआवजा देना उचित होगा। यदि आरोपी ऊपर दिए गए मुआवजे का भुगतान नहीं करता है, तो मध्य प्रदेश राज्य आरोपी को दिए गए समय की समाप्ति के बाद तीन महीने के भीतर मुआवजे की पूरी राशि 5 लाख रुपये का भुगतान करेगा।"

9. हमारे सुविचारित विचार में उक्त मामले में निर्णय उस मामले के तथ्यों तक ही सीमित होना चाहिए। इसे कानून की प्रस्तावना के रूप में नहीं कहा जा सकता है कि जब भी कोई आरोपी किसी पीड़ित के पुनर्वास के लिए स्वीकार्य मुआवजे की पेशकश करता है, तो धारा 304 ए के तहत

अपराध की गंभीरता की परवाह किए बिना, सजा में कमी की जा सकती है।

10. इस संदर्भ में, हम बलविंदर सिंह (ऊपर) के फैसले का संदर्भ ले सकते हैं, जिसमें उच्च न्यायालय ने संशोधन की अनुमति दी थी और आईपीसी की धारा 304 ए, 337, 279 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी द्वारा दी गई सजा की मात्रा को कम करके पहले से ही भोगी गई 15 दिनों की कारावास की सजा के रूप में कम कर दिया गया है। न्यायालय ने दलबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य[6] के फैसले का हवाला दिया और दो पैराग्राफ दोबारा प्रस्तुत किए जिन्हें हम पुनरुत्पादन के लिए बेहद जरूरी मानते हैं:-

> "1. जब मोटर वाहन मौत का जाल बन गए हैं तो लापरवाही से गाड़ी चलाने के दोषी चालकों के प्रति दिखाई गई किसी भी नरमी से सड़क दुर्घटनाओं के और बढ़ने का खतरा होगा। वे सभी जो मोटर वाहन का परिचालन संभाल रहे हैं, विशेष रूप से पेशेवर चालकों को, अत्यधिक सावधानी बरतने के अपने कर्तव्य की निरंतर याद दिलाते रहना चाहिए और साथ ही लापरवाही के मामलों में उन्हें भुगतने वाले परिणामों के बारे में भी याद दिलाना चाहिए। ऐसे चालकों को मानसिक निगरानी में रखने का सबसे प्रभावी तरीका सजा क्षेत्र में एक निवारक तत्व बनाए

---

6. (2000) 5 एससीसी 82

रखना है। उस क्षेत्र में उन्हें दिखाई गई कोई भी छूट उन्हें चालन को तुच्छ और बेपरवाह बनाने के लिए प्रलोभित करेगी।

*****

13. भारत में सड़क दुर्घटनाओं की बढ़ती प्रवृत्ति और पीड़ितों और उनके परिवारों के लिए विनाशकारी परिणामों को ध्यान में रखते हुए, आपराधिक न्यायालय आईपीसी की धारा 304-ए के तहत अपराध की प्रकृति को अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के उदार प्रावधानों को आकर्षित करने वाला नहीं मान सकती हैं। तेजी से या लापरवाही से वाहन चलाने से हुई मौत के अपराध के लिए दी जाने वाली सजा की मात्रा पर विचार करते समय, प्रमुख विचारों में से एक निवारण होना चाहिए। एक पेशेवर चालक लगभग पूरे कामकाजी घंटों के दौरान मोटर वाहन के त्वरक को चलाता है। उसे लगातार खुद को सूचित करते रहना चाहिए कि जब उसका पैर गतिमान वाहन के पैडल पर हो तो वह एक भी क्षण की ढिलाई या असावधानी बर्दाश्त नहीं कर सकता है। वह यह सोचकर जोखिम नहीं उठा सकता है और न ही उसे ऐसा करना चाहिए कि जरूरी नहीं कि लापरवाही से गाड़ी चलाने से कोई दुर्घटना हो; या यदि कोई दुर्घटना घटती भी है तो जरूरी नहीं कि इसके परिणामस्वरूप किसी मनुष्य की मृत्यु ही हो; या यदि ऐसी मृत्यु हो भी जाए तो उसे अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है; और अंत में, यदि उसे दोषी भी ठहराया जाता है तो न्यायालय उसके साथ नरमी

से पेश आएगा। उसे हमेशा अपने मन में यह डर रखना चाहिए कि अगर उसे लापरवाही से वाहन चलाने के कारण किसी इंसान की मौत का कारण बनने वाले अपराध का दोषी ठहराया जाता है तो वह जेल की सजा से बच नहीं पाएगा। मोटर वाहन के लापरवाह चालन के कारण मोटर दुर्घटनाओं की उच्च दर को कम करने के लिए, विशेष रूप से विचारण न्यायालय के स्तर पर, न्यायालय यही भूमिका निभा सकते हैं।"

11. बी. नागभूषणम बनाम कर्नाटक राज्य[7] में अपीलकर्ता को आईपीसी की धारा 304 ए के तहत दंडनीय अपराधों के लिए छह महीने के साधारण कारावास से गुजरने का निर्देश दिया गया था। दो जजों की पीठ ने दलबीर सिंह[8] (ऊपर) का हवाला दिया और सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। जैसा कि कहा गया है, उक्त मामले में रतन सिंह बनाम पंजाब राज्य[8] का एक अंश उद्धृत किया गया था:-

"फिर भी, सजा में सुधार की नीति होनी चाहिए। इस चालक को, यदि उसे एक अच्छा चालक बनना है, तो उसे मानव जीवन और अंग को संभावित चोट के विशेष संदर्भ में, यातायात कानूनों और नैतिक जिम्मेदारी में बेहतर प्रशिक्षण देना होगा। इसलिए, इस क्षेत्र में सजा के साथ ये घटक भी होने चाहिए। हम आशा करते हैं कि जब चालन अपराधों के लिए सजा दी जाएगी तो राज्य इसमें एक पाठ्यक्रम संलग्न

---

7. (2008) 5 एससीसी 730

8. (1979) 4 एससीसी 719

करेगा जिसमें बेहतर चालन के साथ में जिम्मेदारी की जीवंत भावना भी शामिल होगी। हो सकता है, राज्य गरीब परिवारों के पुरुषों के मामले में, पुराने नियमों की कठोरता के बिना, उचित आवेदन पर कभी-कभार पैरोल और सुधारात्मक पाठ्यक्रमों पर विचार कर सकता है, जो सरकारी विवेक के अधीन हैं।"

12. गुरु बसवराज (ऊपर) में अपीलकर्ता को आईपीसी की धारा 337, 338, 279 और 304ए के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषी पाया गया और छह महीने के साधारण कारावास और 2000/- रुपये का जुर्माना भरने की सजा सुनाई गई और जुर्माना ना भरने के रूप में 45 दिन का साधारण कारावास भुगतने की सजा सुनाई गई। कर्नाटक राज्य बनाम कृष्णा[9], सेवक पेरुमल बनाम तमिलनाडु राज्य[10], जशुभा भरतसिंह गोहिल बनाम गुजरात राज्य[11], कर्नाटक राज्य बनाम शरणप्पा बसनगौड़ा अरेगौदर[12] और एमपी राज्य बनाम सलीम[13] पर भरोसा रखते हुए दो न्यायाधीशों की पीठ की यह राय थी कि अपराध की प्रकृति और समाज की अंतरात्मा की मांग को ध्यान में रखते हुए अपराध करने के संबंध में पर्याप्त सजा देने पर न्यायालय की लगातार चिंता बनी हुई है। आईपीसी की धारा 304ए के

---

9. (1987) 1 एससीसी 538

10. (1991) 3 एससीसी 471

11. (1994) 4 एससीसी 353

12. (2002) 3 एससीसी 738

13. (2005) 5 एससीसी 554

तहत दंडनीय अपराध के लिए पर्याप्त सजा देने की चिंता पर जोर दिया गया है। न्यायालय ने कहा है कि यह ध्यान देने योग्य है कि कुछ परिस्थितियों में, शमन करने वाले कारकों पर विचार किया गया है लेकिन उक्त पहलू प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर है। जैसा कि प्राधिकरणों की प्रवृत्ति से पता चलता है, पेशेवर चालन में दक्षता पर जोर दिया जाता है और उससे विचलन जिसके परिणामस्वरूप लापरवाही से गाड़ी चलाई जाती है और दुर्घटना का कारण बनती है, की निंदा की गई है। किसी मोटर दुर्घटना में जब बहुत से लोग घायल हो जाते हैं और मृत्यु हो जाती है, तो इससे समाज में हलचल मच जाती है; चारों ओर भय का भाव व्याप्त हो जाता है। किसी एक की लापरवाही सामूहिक शांति को भंग कर देती है। जब ऐसी कोई दुर्घटना घटती है, तो इसका प्रभाव कई स्तरों पर पीड़ित बनाने और सामाजिक ताने-बाने में दरार पैदा करने की क्षमता रखता है। प्रभावित व्यक्तियों की पीड़ा और व्यथा, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, दोनों का भयावह प्रभाव हो सकता है। इसका समाज पर प्रभाव पड़ता है और इसका प्रभाव तब अधिक महसूस होता है जब दुर्घटनाएं अक्सर शराब पीकर, लापरवाही से या कहें तो उत्साही चालकों द्वारा तेज गति से गाड़ी चलाने के कारण होती हैं, जिन्हें एक तरह से दूसरों की कोई चिंता नहीं होती है। ज्ञात हो कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के प्रावधानों के तहत मुआवजा देना पूरी तरह से एक अलग क्षेत्र है। सीआरपीसी की धारा 357(3) के तहत मुआवजे का अनुदान इस निर्देश के साथ कि मुआवजा उस व्यक्ति को दिया जाए जिसे उस कार्य के कारण कोई हानि या चोट लगी हो, जिसके लिए

आरोपी को सजा सुनाई गई है, उसकी रूपरेखा अलग है और इसे सभी परिस्थितियों में पर्याप्त सजा का विकल्प नहीं माना जाना चाहिए। इसके बाद न्यायालय ने टिप्पणी की:-

"32. हम लाभ के साथ ध्यान दे सकते हैं कि एक उचित सजा उन व्यक्तियों के लिए आंखें खोलने का काम करती है जो सड़क पर वाहन चलाते समय सावधान नहीं रहते हैं और लापरवाह रवैया दिखाते हैं, संभवतः इस धारणा को पालते हुए कि उनके प्रति उदारता दिखाई जाएगी या दूसरों का जीवन "आवारा लड़कों के लिए मक्खियों" के समान है। वे पूरी तरह से भूल जाते हैं कि कई लोगों का जीवन उनके हाथों में है, और उनके उतावलेपन और लापरवाही से इंसान की सुरक्षा की उत्कृष्टता को अशोभनीय तरीके से दफन कर दिया जाता है।

33. ऐसा शायद ही कोई हो सकता है कि अपराध और सज़ा के बीच कोई अनुपात हो। यह देखना न्यायालय का कर्तव्य है कि अपराध करने और सामाजिक व्यवस्था पर इसके प्रभाव को ध्यान में रखते हुए उचित सजा दी जाए। न्याय के लिए सामूहिक आवाज़ जिसमें पर्याप्त सज़ा भी शामिल है, को हल्के से नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता।"

इस विचार के चलते कोर्ट ने हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया।

13. सिरिया बनाम म.प्र. राज्य[14] में इसे इस प्रकार माना गया है:-

---

14 . (2008) 8 एससीसी 72

"समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे उचित सजा देकर हासिल किया जाना चाहिए। इसलिए, कानून को "व्यवस्था" की इमारत की आधारशिला के रूप में समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का सामना करना चाहिए। फ्रीडमैन ने अपने लॉ इन चेंजिंग सोसाइटी में कहा है कि: "आपराधिक कानून की स्थिति वैसी ही बनी हुई है—जैसी होनी चाहिए—समाज की सामाजिक चेतना का एक निर्णायक प्रतिबिंब।" इसलिए, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए। चतुराई से सजा देने की प्रक्रिया जहां होनी चाहिए वहां कठोर होनी चाहिए और जहां आवश्यक हो वहां दया से संयमित होना चाहिए।"

14. एलिस्टर एंथोनी परेरा बनाम महाराष्ट्र राज्य[15] में अंतर्निहित खतरे पर जोर देते हुए न्यायालय ने इस प्रकार कहा:-

"39. धारा 304-ए की तरह, आईपीसी की धारा 279, 336, 337 और 338 केवल लापरवाही या जल्दबाजी में किए गए कार्य के लिए लगती हैं। धारा 279, 304-ए, 336, 337 और 338 की योजना में कोई संदेह नहीं है कि इन अपराधों को ज्ञान या परिणाम उत्पन्न करने के इरादे के बावजूद और परिणाम के बावजूद निर्दिष्ट कार्यों के अंतर्निहित खतरे के

---

15. (2012) 2 एससीसी 648

कारण दंडित किया जाता है। ये धाराएं उन कृत्यों को ही दंडनीय बनाती हैं जिनसे मानव जीवन की मृत्यु या क्षति होने की संभावना हो।"

15. गोपाल सिंह (ऊपर) में सजा की नीति से निपटने के दौरान दो-न्यायाधीशों की बेंच ने शैलेश जसवन्तभाई बनाम गुजरात राज्य[16] से एक पैराग्राफ उद्धृत किया जो इस प्रकार है: -

"7. कानून सामाजिक हितों को नियंत्रित करता है, परस्पर विरोधी दावों और मांगों पर मध्यस्थता करता है। व्यक्तियों और लोगों की संपत्ति की सुरक्षा राज्य का एक आवश्यक कार्य है। इसे आपराधिक कानून के माध्यम से हासिल किया जा सकता है। निस्संदेह, एक अंतर-सांस्कृतिक संघर्ष है जहां जीवित कानून को नई चुनौतियों का उत्तर ढूंढना होगा और अदालतों को चुनौतियों का सामना करने के लिए सजा प्रणाली को ढालना होगा। अराजकता का संक्रमण सामाजिक व्यवस्था को कमजोर कर देगा और उसे खंडहर बना देगा। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे उचित सजा देकर हासिल किया जाना चाहिए। इसलिए, कानून को 'व्यवस्था' की इमारत की आधारशिला के रूप में समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का सामना करना चाहिए। फ्रीडमैन ने अपने लॉ इन चेंजिंग सोसाइटी में कहा है कि: 'आपराधिक कानून की स्थिति वैसी ही बनी हुई है - जैसी होनी चाहिए - समाज की सामाजिक चेतना का एक निर्णायक प्रतिबिंब है।' इसलिए, सजा प्रणाली के

---

16. (2006) 2 एससीसी 359

संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए। दक्षता के साथ तय करके, सजा देने की प्रक्रिया जहां होनी चाहिए वहां कठोर हो, और जहां आवश्यक हो वहां दया से संयमित होना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे।"

उक्त मामले में इसे इस प्रकार रखा गया है:-

"18. न्यायपूर्ण सज़ा समाज की सामूहिक पुकार है। जबकि सामूहिक पुकार को मन में सबसे ऊपर रखना होगा, साथ ही अपराध और सज़ा के बीच आनुपातिकता के सिद्धांत को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है। किसी आपराधिक अपराध के संबंध में उचित दंड का सिद्धांत सजा का आधार है। सज़ा असंगत रूप से अत्यधिक नहीं होनी चाहिए। आनुपातिकता की अवधारणा न्यायाधीश को महत्वपूर्ण विवेकाधिकार की अनुमति देती है लेकिन इसे कुछ सिद्धांतों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए। कुछ मामलों में, दोष की प्रकृति, अभियुक्त का पूर्ववृत्त, उम्र का तथ्य, दोषी की भविष्य में अपराधी बनने की संभावना, उसके सुधार की क्षमता और प्रचलित परिवेश में स्वीकार्य जीवन जीने की क्षमता, प्रभाव—एक सामाजिक खतरा या उपद्रव बनने

की प्रवृत्ति, और कभी-कभी अपराध को अंजाम देने में समय की चूक और अपराध की प्रकृति, पक्षों के बीच संबंध और और दोषी को मूल्य-आधारित सामाजिक मुख्यधारा में लाने के सिद्धांत की आकर्षणशीलता मार्गदर्शक कारक हो सकते हैं। बिना ज़ोर दिए, ये कुछ उदाहरणात्मक पहलू हैं जिन्हें संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। हम यह कहने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि गणितीय सटीकता में न तो कोई स्ट्रेटजैकेट फार्मूला हो सकता है और न ही कोई हल करने योग्य सिद्धांत हो सकता है। यह मामले के तथ्यों और तर्कसंगत न्यायिक विवेक पर निर्भर होगा। न तो किसी न्यायाधीश की व्यक्तिगत धारणा, न स्व-अनुपालित नैतिक दृष्टि और न ही काल्पनिक आशंकाओं को कोई खेल खेलने की अनुमति दी जानी चाहिए। हर अपराध के लिए किसी कठोर उपाय के बारे में नहीं सोचा जा सकता। इसी तरह, केवल अदालत में निहित विवेक के आधार पर किसी अपराधी के साथ नरमी से पेश आने की इजाजत नहीं दी जा सकती। वास्तविक आवश्यकता उन परिस्थितियों को तौलना है जिनमें अपराध किया गया है और अन्य सहवर्ती कारकों को हमने यहां पहले भी इंगित किया है और इस न्यायालय द्वारा कई घोषणाओं में भी कहा गया है। सजा ऐसी कसौटी पर लगाई जानी हैं। विवेक कल्पना के दायरे में नहीं होना चाहिए। इसे उचित सज़ा के वैचारिक सार में समाहित किया जाना चाहिए"

16. श्याम नारायण बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली)[17] में हालांकि एक अलग संदर्भ में सजा के मुद्दे से निपटते समय यह कहा गया है कि मुख्य रूप से यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि किसी भी अपराध के लिए सजा देने का एक सामाजिक लक्ष्य होता है। अपराध की प्रकृति और अपराध करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए सजा दी जानी चाहिए। सजा देने का मूल उद्देश्य इस सिद्धांत पर आधारित है कि अभियुक्त को यह एहसास होना चाहिए कि उसके द्वारा किए गए अपराध ने न केवल उसके जीवन में बल्कि सामाजिक ताने-बाने में भी दरार पैदा की है। उचित सज़ा का उद्देश्य इसलिए बनाया गया है ताकि समाज में व्यक्तियों को, जो अंततः सामूहिक रूप से गठित होते हैं, ऐसे अपराधों के लिए बार-बार पीड़ित न होना पड़े। यह एक निवारक के रूप में कार्य करता है। यह सच है कि, कुछ अवसरों पर, दोषी को खुद को सुधारने के लिए अवसर दिए जा सकते हैं, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि किए गए अपराध और लगाए गए दंड के बीच आनुपातिकता के सिद्धांत को ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस जटिल अभ्यास को अंजाम देते समय, अदालत के लिए यह देखना अनिवार्य है कि अपराध का समग्र समाज पर प्रभाव और तात्कालिक सामूहिक पर इसके प्रभाव के साथ-साथ पीड़ित पर इसके असर को भी देखा जाए।

---

17. (2013) 7 एससीसी 77

17. मौजूदा मामले में लापरवाही से गाड़ी चलाने का तथ्य स्थापित किया गया है। यह अदालत लगातार सड़क दुर्घटनाओं की संख्या में वृद्धि देख रही है और यह भी देखा है कि वाहन चालक किस तरह पूरी तरह से लापरवाही बरत रहे हैं। हमें ऐसा लगता है जैसे नशे की हालत में, तेज रफ्तार और लापरवाही से गाड़ी चलाना या युवा रोमांचक उत्साह के साथ गाड़ी चलाना जैसे कि कोई यातायात नियम नहीं हैं या कानून के अनुशासन का कोई अहम स्थान नहीं है। जैसा कि हम समझते हैं, नायकों ने कानून के प्रति पूरा सम्मान खो दिया है। संभवतः, साधन संपन्न व्यक्ति ने इस विचार को मन में रखते हुए खुद को आश्वस्त कर लिया है कि वह मुआवजे का भुगतान करके मूल सजा से बच सकता है। न तो कानून को और न ही कानून को लागू करने वाली अदालत को कभी इस तथ्य से अनजान रहना चाहिए कि ऐसी दुर्घटनाओं में बहुमूल्य जिंदगियां खो जाती हैं या जो पीड़ित बच जाते हैं वे जीवन भर के लिए अपंग हो जाते हैं, जो एक तरह से मौत से भी बदतर होता है। एक व्यवस्थित समाज में इस तरह की धारणाओं का विकसित होना एक खतरनाक घटना है। कम उम्र सभी परिस्थितियों में स्वीकार की जाने वाली दलील नहीं हो सकती। गरीबों या निरीह लोगों के लिए जीवन उतना ही सार्थक है जितना कि अमीरों और विलासितापूर्ण स्वभाव वाले लोगों के लिए। कहने की आवश्यकता नहीं है, सजा का सिद्धांत सुधारात्मक उपायों को मान्यता देता है लेकिन ऐसे अवसर भी आते हैं जब मामले के तथ्यों के आधार पर निवारण एक अनिवार्य आवश्यकता है। हमारी राय में, यह एक उपयुक्त मामला है जहां

हम यह कहने के लिए बाध्य हैं कि उच्च न्यायालय दया के जुनून से इस सिद्धांत को लागू करने में बह गया है कि मुआवजे का भुगतान सजा को 24 दिनों तक सीमित करने का एक कारक है। यह बिल्कुल गलत सहानुभूति के दायरे में है। यह एक तरह से न्याय का मजाक है। क्योंकि न्याय "सर्वोच्च महिमा", "संप्रभु स्वामिनी" और "सद्गुण की रानी" है जैसा कि सिसरो ने कहा था। इस तरह का अपराध न केवल पीड़ितों के जीवन को बल्कि उनके आसपास के कई अन्य लोगों के जीवन को कलंकित करता है। यह अंततः न्यायिक व्यवस्था में जनता के विश्वास को तोड़ता है। हमारे विचार में, विचारण दंडाधिकारी द्वारा लगाई गई एक साल की सज़ा, जिसकी अपीलीय न्यायालय ने पुष्टि की है, को घटाकर छह महीने किया जाना चाहिए। मामले से अलग होने से पहले हम यह देखने के लिए मजबूर हैं कि भारत में सड़क दुर्घटनाओं का एक बदनाम रिकॉर्ड है। वाहन चालकों में लापरवाही भरा रवैया रहता है। उन्हें लगता है कि वे "उन सभी के सम्राट हैं जिनका वे सर्वेक्षण करते हैं"। नशे के कारण लापरवाही से गाड़ी चलाने में योगदान होता है, जहां दूसरे लोग इसका शिकार बन जाते हैं। गरीबों को लगता है कि उनका जीवन सुरक्षित नहीं है, पैदल यात्री अनिश्चितता के बारे में सोचते हैं और सभ्य व्यक्ति निरंतर भय में गाड़ी चलाते हैं लेकिन फिर भी उन लोगों के अप्रिय रवैये से आशंकित रहते हैं जो खुद को "जीवन से बड़ा" के रूप में पेश करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में, हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि कानून निर्माताओं को आईपीसी की धारा 304 ए में सजा

नीति की जांच, पुनर्विचार और पुनः निरीक्षण करना चाहिए। हम अत्यंत पीड़ा के साथ ऐसा कहते हैं।

19. परिणामस्वरूप, ऊपर बताई गई सीमा तक अपील की अनुमति दी जाती है और प्रतिवादी को सजा की शेष अवधि भुगतने के लिए तुरंत हिरासत में ले लिया जाए।

देविका गुजराल

अपील को अनुमति प्रदान की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता अनिल जोशी द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।